उच्च शिक्षा की भारतीय परंपरा – एक दृष्टि

*आनन्द प्रकाश पाण्डेय**

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में उच्च शिक्षा की एक सुदृढ़ व्यवस्था रही है परंतु उसके स्वरूप में समय के साथ बदलाव आते रहे हैं। वैदिक काल में गुरुकुल, परिषदें, और तपोभूमि उच्च शिक्षा के केंद्र थे जहाँ अमीर और गरीब एक साथ शिक्षा प्राप्त करते थे। उच्च शिक्षा का प्रसार बौद्ध युग में भी बना रहा। गुरुकुल और आश्रम व्यवस्था के साथ-साथ उस काल में मठों, विहारों और विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ जहाँ देश विदेशों से हज़ारों विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। सातवीं और आठवीं शताब्दी में भी कई विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। यह क्रम आगे भी जारी रहा। अँग्रेज़ों के आगमन के बाद अँग्रेज़ शासकों द्वारा कई उच्च शिक्षा संस्थान खोले गए। परंतु धीरे-धीरे इन संस्थानों में भारतीयता लुप्त होने लगी और शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी होता गया। आजादी के बाद विश्वविद्यालयों व उच्च-शिक्षा संस्थानों में बहुत वृद्धि हुई है परंतु उनकी गुणवत्ता पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ है। उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम, उपयोगिता व उपलब्धता को लेकर भी सवाल उठते रहे हैं। आज भारतवर्ष में प्रचलित उच्चशिक्षा व्यवस्था पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

मानव सभ्यता और सामाजिक विकास, मानवीय बुद्धि से गहरे से जुड़ा है। हर मनुष्य में कुछ-न-कुछ बुद्धि होती है। शिक्षा द्वारा मनुष्य की प्रकृति, उसकी सामर्थ्य, उसकी संभावनाओं, उसकी बुद्धि और विवेक को बेहतर बनाया जा सकता है। शिक्षा वस्तुतः प्रकृति प्रदत्त स्वरूप में परिवर्तन लाने का ही नाम है। इसलिए शिक्षा न केवल वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए आवश्यक है अपितु सभ्यता और संस्कृति के विकास के लिए भी अनिवार्य है। जिन देशों ने अपने यहाँ बेहतर शिक्षा व्यवस्था बनाई है उन देशों में काफी ऊँचे दरजे का विकास हो रहा है।

*सहायक निदेशक (उ.शि.), उ.प्र. इलाहाबाद.

प्राचीन भारत में शिक्षा, गुरु परंपरा के रूप में मान्य थी। शिष्य गुरु के सानिधय में रहकर शिक्षा ग्रहण करता था। शिक्षा व्यवस्था पूर्णतया स्वतंत्र थी। किसी शासन के परितंत्र नहीं थी। वैदिक ऋषियों के आश्रम शिक्षा के मुख्य केंद्र थे। प्रत्येक आश्रम एक विश्वविद्यालय की भाँति कार्य करता था। आश्रम की जीवन पद्धति ऋत् (नैतिक कार्य) से संचालित होती थी। विद्यार्थी उपनयन संस्कार के पश्चात आश्रमों में प्रवेश लेते थे और उन्हें द्विज कहा जाता था। शिष्य गुरु के घर या आश्रम में निवास करते थे। गुरु-शिष्य का संबंध पिता-पुत्र सा था। सामान्यतः विद्या अवधि 12 वर्ष थी। किंतु कुछ शिष्य सत्य की खोज में आजीवन अध्ययनरत रहते थे जिन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा जाता था। प्रशिक्षण, श्रवण, मनन और निदिध्यासन के माध्यम से दिया जाता था। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मज्ञान था। किंतु इसके अतिरिक्त तीन अन्य उद्देश्य भी थे -(1) धर्म-कर्त्तव्यों का पालन (2) अर्थ-भौतिक संपन्ता की प्राप्ति (3) काम-विधि सम्मत सुख।

प्राचीन भारतीय शिक्षा परंपरा की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह थी कि उसमें गुरु के प्रति प्रचुर श्रद्धा और भक्ति थी। गुरु का स्थान सर्वोच्च था। समाज में उसे अत्यधिक आदर प्राप्त था। शाब्दिक दृष्टिकोण से भी गुरु उसे कहा जाता है जो गौरव और सम्मान के योग्य हो। एक अन्य व्याख्या के अनुसार 'गु' का अर्थ है अंधकार और 'रु' का अर्थ है अंधकार को दूर करने वाला। इस प्रकार गुरु का अर्थ हुआ अज्ञानता के अंधकार को दूर करना। गुरु ही अंधकार से प्रकाश तक का मार्गदर्शन करता है। प्राचीन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि विद्यार्थियों के शिक्षण काल में ईश्वर के तीनों स्वरूप उन्हें गुरु के नामरूप में दिखाई पड़ते हैं। गुरु ही परमब्रह्म है। गुरु में ही वह शक्ति है जो शिष्य के भाग्य को बदल सकता है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् पर ब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

वैदिक काल में तीन प्रकार के शिक्षा केंद्र कार्य कर रहे थे — (1) गुरुकुल - यह आधुनिक विश्वविद्यालय की भाँति कार्य करता था। (2)परिषद्— इसमें प्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं विषय विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता था। (3) तपोभूमि— इन स्थलों पर उच्च कोटि के विद्वानों द्वारा गोष्ठियाँ आयोजित की जाती थीं। जिसमें धार्मिक एवं दार्शनिक समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जाता था । तत् समय नैमिषारण्य तपोभूमि सबसे अधिक प्रतिष्ठित था। गुरुकुल-आश्रमों के प्रधान को कुलपति कहा जाता था। रामायणकाल में सबसे महत्त्वपूर्ण कुलपति ऋषि वशिष्ठ हुए जिनके आश्रम में दस हजार छात्र अध्ययन करते थे। प्रयाग के ऋषि भारद्वाज का आश्रम भी उस समय शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। महाभारतकाल में भी आश्रम विद्या के प्रमुख केंद्र थे। ऋषि कण्व के आश्रम की ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। कण्व, आश्रम के कुलपति थे। ऋषि व्यास का आश्रम भी बहुत वृहत था और लगभग 10 हज़ार विद्यार्थी वहाँ अध्ययन करते थे। यह गंगा नदी के पार हिमालय की तलहटी में स्थित था। परशुराम का आश्रम महेन्द्र पर्वत पर था।

अवंती में स्थित संदीपन का आश्रम भी तत् समय का प्रमुख केंद्र था। श्रीकृष्ण, बलराम और सुदामा वहाँ के छात्र थे। इसी समय नेमिषारण्य भी

ज्ञान का प्रमुख केंद्र था जिसके कुलपति शौनक थे। स्कन्दपुराण के अनुसार यहाँ पर छः हजार ऋषि एवं कई हज़ार विद्यार्थी निवास करते थे। इन गुरुकुलों के अतिरिक्त भी बहुत से छोटे-छोटे गुरुकुल थे, जिनमें आचार्य शिष्यों को अपने निवास स्थान पर पढ़ाया करते थे। अमीरों और गरीबों के लिए ज्ञानार्जन का मार्ग सदैव खुला था। संदीपन के आश्रम में सुदामा जैसे निर्धन और श्रीकृष्ण जैसे ऐश्वर्यसंपन्न व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करते थे तथा मुनि भारद्वाज के आश्रम में द्रोण जैसे निर्धन ब्राह्मण और द्रुपद जैसे ऐश्वर्ययुक्त राजकुमार शिक्षा प्राप्त करते थे। शिक्षा का मूल उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति और अज्ञान की निवृत्ति था। भारतीय शास्त्रों में कहा गया है कि दुष्टजनों की विद्या विवाद के लिए होती है। उनका धन मद, विलासिता और स्वार्थपूर्ति के लिए होता है तथा उनकी शक्ति शोषण एवं उत्पीड़न के लिए होती है। परंतु साधु पुरुषों की विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति आर्त प्राणियों की रक्षा करने के लिए होती है।

विद्या विवादाय धनं मदाय,
शक्ति परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतद्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ।

(गुणरत्न-7)

शिक्षा का प्रसार बौद्ध युग में भी बना रहा। गुरुकुल और आश्रम व्यवस्था के साथ-साथ इस युग में मठों, विहारों, उद्यानों और विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ था। विहारों में वेणुवन, जेतवन, यास्तिवन, सीतवन, पूर्वाराम, मुहावन, आम्रवन, न्यूग्रोधाराम, गोष्ठीराम आदि प्रमुख थे जहाँ पर नैतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा दी जाती थी। अध्यापन कार्य मौखिक हुआ करता था। शिक्षकों में सारिपुत्त, महाभोगलान, महाकच्चायन, उपालि, आनंद और राहुल अति प्रतिष्ठित थे। इस युग में बड़े-बड़े विश्वविद्यालय बने जिनमें तक्षशिला, नालंदा, बल्लभी और विक्रमशिला विश्वविद्यालय विश्वभर में प्रसिद्ध थे।

तक्षशिला भारत का सबसे प्राचीन विश्वविद्यालय था। यह ब्राह्मण विद्याओं का केंद्र था । यहाँ पर वेदत्रयी, अष्टादश, शिल्प, व्याकरण और दर्शनशास्त्र में अध्ययन करने के लिए विदेशों से जिज्ञासु आते थे। सम्राट अशोक के समय तक यह विद्या केंद्र शिखर पर था। पतंञ्जलि और जीवक यहाँ के विद्यार्थी एवं अध्यापक थे। व्याकरण के महान पंडित पाणिनी तक्षशिला में शिक्षक थे। प्रख्यात शल्य चिकित्सक कुमारजीव तक्षशिला के ही विद्यार्थी थे। डॉ. रामजी उपाध्याय का मत है कि शिल्पों का प्रथम सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालय तक्षशिला था। यहाँ 18 शिल्प पढ़ाए जाते थे। 64 कलाओं का विधिवत अध्ययन होता था। विद्यार्थियों के जीवन और आचार पर विशेष ध्यान दिया जाता था। नालंदा विश्वविद्यालय मगध के राजा शुक्रादित्य ने बनाया था। इसका आकार बहुत विशाल था इसके अधिकार में 200 गाँव थे। यहाँ 10,000 विद्यार्थी और 1500 अध्यापक रहते थे। अध्यापकों में आचार्य नागार्जुन, आर्यदेव, चन्द्रपाल, धर्मपाल, भद्रसेन, दिग्नाग, ज्ञानचन्द्र, शांतिरक्षित वसबंधु, गुणमति, स्थिरमति, प्रभाकर मित्र आदि प्रमुख थे। इसकी कीर्ति समस्त एशिया में फैली थी। चीन, जापान, तिब्बत, कोरिया, टोखरा और मंगोलिया तक के विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने आते थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग और

ईत्सिंग ने यहाँ अध्ययन किया था। नालंदा में वैदिक और बौद्ध दोनों धर्मों के ग्रंथों का पठन-पाठन होता था। इन ग्रंथों के मुख्य विषय - व्याकरण, न्याय, चिकित्सा विज्ञान, दर्शन और अध्यात्मशास्त्र थे। न्यायशास्त्र के लिए यह विश्वविद्यालय विख्यात था। इस प्रकार 11वीं सदी तक यह अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय रहा। बारहवीं सदी में तुर्कों के आक्रमण से यह विश्वविद्यालय नष्ट हो गया।

सातवीं शताब्दी में बल्लभी विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। यहाँ धर्मशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र जैसे लौकिक और व्यावहारिक विषयों का अध्यापन होता था। ह्वेनसांग के अनुसार यहाँ सैंकड़ों संघाराम थे तथा लगभग 6000 बौद्ध भिक्षु निवास करते थे।

आठवीं शताब्दी में पालवंश के नरेशों ने बिहार में भागलपुर से चौबीस मील दूर पत्थर घाटा स्थान पर विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना की। चार शताब्दियों तक यह भारत का प्रमुख शिक्षा केंद्र था। यहाँ के विद्यार्थियों के भोजन, निवास, वस्त्र आदि की व्यवस्था विश्वविद्यालय की ओर से होती थी। विश्वविद्यालय में रत्नवज्र, कृष्ण समर वज्र, लीला वज्र, गतरक्षित, दीपंकर, श्रीज्ञान, बोधिभद्र, कमलरक्षित और नरेष श्रीज्ञान जैसे धुरंधर आचार्य थे। इस विश्वविद्यालय में धर्म, साहित्य, व्याकरण, न्यायदर्शन तथा तंत्रमंत्र शास्त्र का विशेष अध्ययन होता था। सन् 1203 में मुहम्मद बिन वख्तियार खिलजी ने इस विश्वविद्यालय को विध्वंस कर दिया।

उपर्युक्त वर्णित शिक्षा केंद्रों के अतिरिक्त दक्षिण भारत में काँची, ओदंतपुरी, वाराणसी, नवद्वीप, धारा, कन्नौज, उज्जैन आदि नगर शिक्षा के प्रमुख केंद्र थे।

प्राचीन काल की शिक्षण विधि बहुत उत्तम थी। इत्सिंग ने अपने ग्रंथ में प्राचीन शिक्षण क्रम का उल्लेख किया है। विद्यार्थियों को सबसे पहले व्याकरण का अध्ययन करना पड़ता था। दस वर्ष पश्चात् विद्यार्थी गद्य और पद्य की रचना प्रारंभ करते थे और हेतुविद्या तथा अभिधर्म कोष में लग जाते थे। 'न्याय द्वार तारक शास्त्र' से अनुमान शक्ति और 'जातकमाला' से विद्यार्थियों की ग्रहण शक्ति को विकसित किया जाता था। इसके बाद विवाद करने की शिक्षा दी जाती थी। तत्पश्चात् भर्तृहरि की महाभाष्य टीका और 'वाक्य प्रदीप' पढ़ाया जाता था। व्याकरण और हेतुविद्या के अध्ययन के बाद ज्योतिष, वैद्यक न्यायशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी और सबसे अंत में आध्यात्मविद्या पढ़ाई जाता था। शिक्षा का यह क्रम अनेक वर्षों तक थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ चलता रहा। मुस्लिमों के आगमन के बाद यह व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। मुस्लिमों की अपनी शिक्षा संस्थाएँ थीं जिन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - (1) मकतब और मदरसा। मकतब प्राथमिक शिक्षा के केंद्र थे जो सामान्यत: मस्जिदों से संलग्न होते थे। इनका संचालन सरकारी अथवा गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा किया जाता था। इनमें अरबी-फारसी का ज्ञान कराने के साथ कुरान को कंठस्थ कराया जाता था। कुछ मकतब खानगारों (सूफ़ी संतों के आश्रम) से संलग्न होते थे, वहाँ पर सूफ़ी धर्म एवं जीवन से बच्चों को अवगत कराया जाता था। मदरसे उच्च शिक्षा के केंद्र थे। मकतब की शिक्षा समाप्त करने के बाद ही कोई छात्र मदरसे में प्रविष्ट हो सकता था। प्रमुख मदरसों में दिल्ली, आगरा, लाहौर, जौनपुर, रामपुर, बीदर, कश्मीर,

गुजरात, बीजापुर, मालवा और मुल्तान थे। शिक्षा का मुख्य पाठ्यक्रम धर्मग्रंथों की टीका, हदीस (परंपराएं), फिक (न्यायशास्त्र), व्याकरण, तर्कशास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, साहित्य, तत्वमीमांसा आदि थे। शिक्षा का माध्यम अरबी भाषा थी। उस समय के प्रमुख विद्वानों में अबुल फ़जल, फैज़ी, उर्फी, नजीरी, कमीम, कुदसी हसन निज़ामी, अमीर हसन देहलवी, अमीर खुसरो, अब्दुल रहीम खानखाना, दाराशिकोह, अब्दुल कदीर बदावनी, रामानुज, जयदेव, जीव गोस्वामी, भास्कराचार्य, कल्हण, सायण, वाचस्पति मिश्र और हेमचन्द्र थे। मुगलों की शिक्षा पद्धति के विस्तार के बावजूद हिंदू शिक्षा के कुछ केंद्र निरंतर चलते रहे। जिनमें बनारस और मिथिला प्रख्यात थे। 17वीं और 18वीं शताब्दी के बीच मुगलों द्वारा स्थापित बहुत से मदरसे लुप्त हो गए।

15वीं शताब्दी के अंत में यूरोपियनों का आगमन हुआ। सर्वप्रथम पुर्तगाली गोवा आए। उनके बाद अँग्रेज़, डच और फ्राँसीसियों का आगमन हुआ। इन लोगों ने पाश्चात्य ज्ञान प्रदान करने के दृष्टिकोण से अनेकों शिक्षण संस्थाएँ खोलीं। 31 दिसंबर 1600 को ईस्ट इंडिया कंपनी का 15 वर्षों के लिए भारत में प्रवेश हुआ। 1772 में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत में शासन करने का अधिकार प्रदान कर दिया। वारेन हेस्टिंग्स ने सबसे पहले भारतीयों की शिक्षा की ओर ध्यान दिया। उन्होंने 1780 में कलकत्ता मदरसा की स्थापना की। दूसरा महत्त्वपूर्ण शिक्षण संस्थान 'बनारस संस्कृत कॉलेज' बनारस के रेजीडेंट जोनाथन डंकन के प्रयास से 1791 में स्थापित हुआ। इस प्रकार प्रारंभ में अँग्रेज़ शासकों द्वारा भारतीयों की शिक्षा के लिए उन्हीं की भाषा में प्रयत्न प्रारंभ किया गया। वेद एवं अन्य धार्मिक ग्रंथों के पठन-पाठन की व्यवस्था की गई। परन्तु कालांतर में कुछ ईसाई मिशनरियों द्वारा यह कहने पर कि ईसाई सरकार द्वारा गैर ईसाई धर्मों को प्रोत्साहित किया जा रहा है, के फलस्वरूप उक्त संस्थाओं में भारतीय धार्मिक शिक्षा बंद कर दी गई। इसी क्रम में 1800 ई. में एक अन्य प्रमुख शिक्षण संस्थान 'फोर्ट विलियम कॉलेज' की स्थापना बंगाल में की गई। जिसका उद्देश्य कंपनी के लिए कनिष्ठ सरकारी सेवक तैयार करना था। धीरे-धीरे ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा शिक्षा नीति में बदलाव लाया गया। भारतीय प्राचीन शिक्षा में अविश्वास प्रकट किया गया तथा पश्चिमी शिक्षा को श्रेष्ठ बताया गया। लार्ड मैकाले ने अंग्रेज़ी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रबल समर्थन किया। 1836 ई. में अंग्रेज़ी भाषा शिक्षा का माध्यम बन गई। वस्तुतः मैकाले का उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना था जो रंग और रक्त से तो भारतीय हों परंतु प्रकृति, विचार, नैतिकता और बुद्धि से अँग्रेज़ हों। 1835 में गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेण्टिक की समिति ने यह मत दिया कि अँग्रेज़ सरकार का मुख्य उद्देश्य भारतीयों में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान का प्रचार होना चाहिए तथा शिक्षा के समस्त धन का प्रयोग अंग्रेज़ी की शिक्षा पर किया जाना चाहिए। सरकारी धन का प्रयोग प्राच्य विद्या की छपाई पर नहीं करना चाहिए। सरकार के उक्त प्रस्ताव का अनेक प्रतिष्ठित भारतीयों ने समर्थन किया। जिनमें राजाराम मोहन राय और राधाकान्त देव प्रमुख थे। उदारवादी अँग्रेज़ों ने उसका समर्थन इस आधार पर किया कि इससे स्वतंत्रता और

समानता के विचारों को फैलाने का अवसर मिलेगा तथा भारतीय स्वयं शासन करने के योग्य बन जाएँगे। शिक्षा के विस्तार के दृष्टिकोण से ब्रिटिश सरकार ने 24 जनवरी, 1857 को लंदन विश्वविद्यालय के प्रतिमान पर कलकत्ता, बाम्बे और मद्रास विश्वविद्यालय की स्थापना की तथा प्रत्येक विश्वविद्यालयों में कला संकाय, विज्ञान संकाय, चिकित्सा विज्ञान संकाय और अभियांत्रिकी विभाग का शिक्षण कार्य प्रारंभ किया। इन विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम एवं कार्यालय की भाषा अंग्रेज़ी थी। वर्ष 1872 में ब्रिटिश सरकार ने इलाहाबाद में म्योर सेंट्रल कालेज की स्थापना की तथा 1887 में उसे इलाहाबाद विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान कर दिया गया। उस समय इसकी परिधि में संयुक्त प्रांत, केंद्रीय प्रांत, केंद्रीय भारत एवं राजपूताना शामिल था। आज़ादी की लड़ाई के दौरान भारतीयों में मैकाले की शिक्षा प्रणाली को खत्म करके देश की जनता की ज़रुरतों के अनुरूप एक नयी प्रणाली खड़ी करने का सपना देखा गया था। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में नयी तालीम की एक क्रांतिकारी कल्पना भी पेश की गई थी। परंतु आज़ाद भारत के शासक वर्ग को यह मंज़ूर नहीं था। उसने मैकाले की शिक्षा प्रणाली को न केवल जारी रखा बल्कि उसे और मज़बूती प्रदान की गई। आज देश में 11,80,000 स्कूल, 17,625 कॉलेज, 328 विश्वविद्यालय एवं 122 डीम्ड विश्वविद्यालय हैं। परंतु दुनिया के उच्च कोटि के सौ केंद्रों में हमारे किसी शिक्षा केंद्र की गिनती नहीं है।

वर्ष 1991 में भारत सरकार ने देश की अर्थव्यवस्था के दरवाज़े वैश्विक पूँजी और मुक्त बाज़ार के लिए खोल दिए। शिक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक की नीतियाँ हावी होने लगीं। मुक्त बाज़ारवाद का सिद्धांत लागू किया गया। यह नियम शिक्षा पर पूरा नियंत्रण किए बगैर आगे नहीं बढ़ सकता था। इसके लिए यह ज़रूरी हो गया कि नर्सरी से लेकर इंजीनियरिंग, मेडिकल शिक्षा तक जो पढ़ाया जाए वह उपभोक्तावादी मुक्त बाज़ार की गुलामी करने वाला जनमानस तैयार करे। इसके अतिरिक्त उतने ही लोगों को ऊँची गुणवत्तामूलक शिक्षा दी जाए जितने की ज़रूरत वैश्विक पूँजी को अपने कारोबार के लिए है। शेष लोगों को या तो महज़ साक्षरता तक ही सीमित कर दिया जाए या फिर उन्हें ऐसे कौशल दिए जाएँ जिनसे वे बाज़ार के लिए आवश्यक निम्न स्तरीय काम कर सकें। आज यही शिक्षा प्रणाली विकसित हो चुकी है। वर्तमान में हमारे विश्वविद्यालयों की स्थिति बहुत ठीक नहीं है। राष्ट्रीय और अंर्तराष्ट्रीय स्तर के शोध अब गिनती के विश्वविद्यालयों तक सीमित हो गए हैं। पढ़ाई कराकर छात्रों को ज्ञान से समृद्ध करने के बजाय विश्वविद्यालय डिग्री उपलब्ध कराने तक सीमित हो गए हैं। गुरु-शिष्य परंपरा लगभग समाप्त-प्राय है। विश्वविद्यालयों की इस बदहाली का एक कारण शिक्षा को निजी हाथों के सुपुर्द करना है। निजी क्षेत्र जब कहीं दाखिल होता है तो वह चैरिटी के लिए नहीं बल्कि कारोबार के लिए होता है। निजी क्षेत्र के ज़्यादातर शिक्षा केंद्र गुणवत्ता और ज़रूरी संसाधनों के अभाव से ग्रस्त है। इनका मानदंड स्तर सार्वजनिक स्कूल प्रणाली से कम हैं। दुनिया के सबसे ताकतवर और विकसित आठ मुल्कों (अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, जापान, फ्रांस, जर्मनी, रूस व इटली) जिन्हें जी-8 कहा जाता है,

में से केवल ब्रिटेन को छोड़कर अन्य सभी में सरकारी धन से चलने वाली उम्दा गुणवत्ता मूलक मजबूत सार्वजनिक स्कूल प्रणाली है। अमेरिका में डेढ़ सौ सालों से सार्वजनिक स्कूल प्रणाली है। जहाँ अमीर-गरीब और विभिन्न नस्लों, मज़हबों व भाषाओं की पृष्ठभूमि के बच्चे एक साथ पढ़ते हैं। निजी स्कूल नाममात्र के हैं। प्रत्येक स्कूल पड़ौसी स्कूल (neighbourhood school) होता है यानि आपके पड़ोस में जो भी स्कूल है उसके अलावा आप अपने बच्चे को और कहीं नहीं पढ़ा सकते हैं। इसलिए वहाँ हर एक स्कूल का उम्दा होना अनिवार्य है। भारत में भी सभी को उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त हो इसके लिए सार्वजनिक समान स्कूल प्रणाली का नेटवर्क तैयार करना होगा। इसके अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं है। शिक्षा आज के भूमंडलीय समाज के संदर्भ में विशिष्ट समृद्धि अथवा प्रतिष्ठा का चिह्नमात्र नहीं रह गई है। हमारे जीवन में नयी लहर, उत्साह और संगठन अवतरित हो रहे हैं। एक बड़े पैमाने पर नव शिक्षित वर्ग का उदय हुआ है। भारतीय समाज में इन परिवर्तनों के अनुरूप क्या शिक्षा की प्रणाली एवं उद्देश्यों में परिवर्तन हुआ है इस पर स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। साधारणतया छात्र आत्मलाभ और ज्ञान के प्रति परम समर्पण की भावना से अनुचालित नहीं हो रहा है। शिक्षा, विद्यार्थी एवं विद्या केंद्र सीधे बाज़ार पर केंद्रित हो गए हैं। शिक्षाशास्त्रियों को अब शिक्षा की प्रणाली, आदर्श एवं लक्ष्य इनके अनुरूप बनाने पड़ेंगे।

शिक्षा सामाजिक अनुशासन एवं व्यावसायिक संगठन के स्तर पर सत्ता, शासन एवं अर्थ के लिए सदा सतत बदलते सामाजिक शक्तियों के संतुलन के पीछे भागती रही। सामंतयुगीन समाज में शिक्षा संभ्रांत वर्ग के ऐश्वर्य एवं रुचि के अनुकूल भंगिमाएँ गढ़ने में सक्रिय रही। ब्रिटिश शासन के दरम्यान वह अँग्रेज़ों के हितों की पूर्ति करती रही। परिणामस्वरूप भारतीय शिक्षा की परंपरा धूल धूसरित हो गई। संस्कृत भाषा और उसमें संकलित विपुल-ज्ञान, साहित्य और अर्थ इस युग में हम खो बैठे। जो संस्कृत भाषा 17वीं शताब्दी तक विश्व की सिरमौर रही उसे कुछ परंपरा एवं कुलीनता के समर्थक वेदपाठी ब्राह्मण ही ज़िंदा रख सके हैं। उसकी सार्थकता एवं रागात्मक गतिविधियाँ सैंकड़ों साल पहले ही विलुप्त हो गई हैं। जिस प्रकार पठानों और मुगलों के शासनकाल में भारतीय संभ्रांत वर्ग प्रायः फारसी के प्रति आकर्षित था वैसा ही कंपनी बहादुर के शासनकाल से आज तक वह अंग्रेज़ी के प्रति आकर्षित है।

ध्यातव्य है कि अंग्रेज़ी भाषा, शिक्षा एवं पद्धति आज केवल स्वामी की ही भाषा नहीं है बल्कि वह नवीन स्पर्धा, औद्योगिक विकास, नगरीकरण एवं आधुनिकता का पर्याय मानी जाने लगी है। इतना सब होते हुए भी भारतीय अंग्रेज़ीदाँ आज तक अंग्रेज़ी के साथ वह निर्लिप्त, अकुंठित और सहज रिश्ता नहीं जोड़ सका जिसके होने के बाद ही मानव चेतना, संस्कृति में उपस्थित और चरितार्थ मूल्यों को आत्मसात करके शिक्षा की छूंछी कसरत से ऊपर उठाती है। मैकाले से लेकर सैम पित्रौदा तक अंग्रेज़ी को भारतीय शिक्षा के लिए अनिवार्य मानते हैं। यह एक कुंठितहीनता का ही प्रभाव है। शिक्षक, शिक्षाशास्त्री और शिक्षा आयोग इस अबूझी लीक को रटते हुए अपने आलसी, परिश्रम विरागी वृत्ति एवं यथा

स्थितिवादी प्रमोद को ही उद्घाटित करते हैं। यह बहुत बड़ी कमी है। इसके रहते ज्ञान एवं मूल्यपरक शिक्षा की गुंजाइश न्यूनतम ही रहेगी।

यहाँ पर एक प्रश्न यह भी प्रासंगिक है कि क्या भारतीय शिक्षा का कोई सार्वदेशिक लक्ष्य, योजना या आदर्श है? और यदि ऐसा कोई लक्ष्य है तो क्या हमारी शिक्षण संस्थाएँ उसके अनुरूप चल रही हैं? जहाँ तक मेरा मानना है कि आज तक शिक्षा का कोई स्पष्ट लक्ष्य हमारे जीवन के समक्ष उभरकर नहीं आया। भारत में वर्ग, जाति, धर्म, परंपरा, भाषा और स्वार्थ की लीके इतनी गहरी हैं कि उसका असर शिक्षा के पाठ्यक्रमों पर भी पड़ता है। आधुनिकीकरण के नाम पर युवा पीढ़ी को जातिवाद, सामंतवाद एवं पाश्चात्य सभ्यता की रंगीन झूठी अतिरंजना में ललचाकर कुंठित किया जा रहा है। परिणामस्वरूप युवाओं में अमर्यादित, अशोभनीय, अमानवीय, असामाजिक, अवसरवादी एवं प्रतिक्रियावादी स्वभाव प्रकट होने लगा है। आज मिल्टन जैसा कवि, प्लेटो जैसा दार्शनिक, डार्विन और न्यूटन जैसा वैज्ञानिक शेक्सपियर और कालीदास जैसे साहित्यकार, गेटे जैसा विचारक, लियोनार्दो की तरह इंजीनियर और चित्रकार नहीं बनाए जा सकते हैं। इसके लिए हमें प्रचलित शिक्षा व्यवस्था की कमियों से बचना होगा और एक समकालीन समन्वित संस्कृति के योग्य शिक्षा व्यवस्था बनानी होगी।

संदर्भ

शर्मा, शंकर *दयाल,* 1995. *प्रोफेशनल काम्पीटेन्सी इन हायर एजुकेशन* इन *इण्डियन ट्रेडिशन,* एजुकेशन बाई एन. के. ओबेराय (संपादक), सी.पी.डी.एच.ई., यूनीवर्सिटी ऑफ दिल्ली, 1995, पृष्ठ-8

लूनिया, बी.ए. *भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास* (सत्रहवाँ संस्करण), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, हास्पिटल रोड, आगरा

शंकर गौरी, हीराचंद ओझा, 1951. *मध्यकालीन भारतीय संस्कृति,* हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद उ.प्र.

सांकृत्यायन, राहुल, 1974. *पुरातत्व निबंधावली,* इण्डियन प्रेस प्राइवेट लि. इलाहाबाद, उ.प्र.

उपाध्याय, रामजी, 1985. *भारतीय धर्म और संस्कृति,* लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, उ.प्र.

दर, एस.एल. एवं एस. सोमासकान्नदन, 2009. मूल्य परक शिक्षा : चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ, *इन इण्डियन एजुकेशन - ए हिस्टारिकल सर्वे,* राजर्षि टण्डन मुक्त वि. वि. इलाहाबाद, पृ. 17-41

सद्गोपाल, अनिल, 2009. *शिक्षा अधिकार विधेयक पर सवाल,* सामयिक वार्ता आकाशवाणी, नयी दिल्ली